JOURNAL OF LEGAL STUDIES,

POLITICS AND ECONOMICS RESEARCH

An Internationally Indexed Peer Reviewed & Refereed Journal

www.JLPER.com

Published by iSaRa Solutions

प्राचीन भारत में शिक्षा अध्ययन के विषयों के विशेष संदर्भ में

डॉ. संतोष जैन आचार्य अंग्रेजी
राजकीय कॉलेज शिक्षा राज.

समाज में शिक्षा का महत्व सर्वमान्य है। शिक्षा की समुचित्त व्यवस्था पर सांस्कृतिक, बौद्धिक तथा वैज्ञानिक प्रगति संभव है अर्थात् शिक्षा समाज के व्यक्तित्व का निर्माण करती है तथा समाज व्यक्ति पर ही आश्रित रहता है। भारतीय मनीषियों ने शिक्षा को उसकी व्यापकता के अनुसार ही महत्व प्रदान किया था। उन्होने शिक्षा को उपयोगिता, अनुशासन, सामाजिक प्रतिष्ठा, सहन–शक्ति तथा पूर्ण ज्ञान अथवा जीवन के अंतिम उद्‌देश्य मोक्ष प्राप्ति के लिए अनिवार्य माना था। उदाहरण के लिए वृहदाख्यक उपनिषद[1] में शिक्षा का अंतिम उद्‌देश्य सर्वोच्च ज्ञान की खोज माना गया। ब्रह्मचर्य आश्रम में रहते हुए बालक शिक्षा के विभिन्न अंगों का ज्ञान प्राप्त कर दूसरे आश्रम गृहस्थाश्रम के उत्तरदायित्वों को पूरा करने की योग्यता संपादित करता था और यह क्रम केवल प्रथम और द्वितीय आश्रम तक ही सीमित नहीं रहता था इसकी परिसमाप्ति तृतीय आश्रम और चतुर्थ आश्रमों के उत्तरदायित्वों की पूर्ति की योग्यता प्राप्त कर उन उत्तरदायित्वों को पूर्ण कर ''मौक्ष'' प्राप्ति में ही थी। शिक्षा सम्पूर्ण जीवन के लिए एवं संपूर्ण जीवन शिक्षा के लिए था।

अतः यह स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय समाज में शिक्षा एक आवश्यकता थी और इसका आदर्श केवल अंतिम सत्य की खोज ही नहीं था वरन् व्यक्ति द्वारा स्वयं को निष्ठापूर्ण ढंग से गृहस्थ जीवन जीने के सुयोग्य बनाना भी था।

शिक्षा का प्रारम्भ ब्रह्मचयश्रिम से होता था, ब्रह्मचर्याश्रम का प्रारंभ उपनयन संस्कार के उपरांत होता था। उपनयन संस्कार के उपरान्त गुरू बालक को सर्वप्रथम शोचाचार, (पवित्रता से रहने के नियम), अग्निकार्य (समिधा, सायं और प्राप्तः अग्निहोत्र करना) तथा संध्योपासना आदि की शिक्षा देता था।[2] गुरू के शिक्षा प्रदान

करने के कार्यक्रम में पवित्रता से रहने तथा आचार आदि का सम्यक ज्ञान प्रदान करना प्राथमिकता रखता था। इसे इतना महत्व प्रदान करने का कारण सर्वप्रथम यह था कि बालक रहन सहन के सामान्य स्तर को पवित्रता आदि के प्रारंभिक ज्ञान के द्वारा ही सीख सकता था, पवित्रता ही शुद्ध विचारों की जननी कही गई है और यह ब्रह्मचारी के लिए दिन और रात्रि के कार्यक्रम के रूप में थी। अतः शिक्षा प्रारम्भ होते ही जीवन को एक नियमित गति में रखकर नियन्त्रित करना आवश्यक था। याज्ञवल्क्य इस विषय इस विषय में अधिक विस्तार से विवेचना करते है।[3]

वेद–वेदांग के अध्ययन से पूर्व गायत्री मंत्र का उपदेश बालक को प्रदान किया जाता था। गायत्री मंत्र को ज्ञान की कुंजी के रूप में चित्रित किया गया है। मनु के अनुसार ब्रह्माजी ने प्रत्येक वेद से अ. उम् (ओं) इन तीन अक्षरों को निकाला सावित्री मंत्र को भी ऋक, यजुः तथा सामवेदों से ही ब्रह्मा जी ने निकाला, अतएव यह ओंकार तथा भ्: भुवः स्वः ये ज्ञान के अग्रगामी अक्षर कहे जा सकते है इसलिए शिक्षार्थो द्वारा इनको ही सर्वप्रथम मनन् करने का विधान स्मृतियाँ करती है।[4]

इस ओंकार एवं गायत्री मंत्र को सांय–प्रातः अभ्यास का नियम होता था। प्रारंभ में बालक को केवल ओंकार और भूः भूवः स्वः का ही उपदेश दियाा जाता था। जब वह इनका अभ्यास कर लेता था तब उसे इन चार अक्षरों की सारगर्भिता का परिचय कराया जाता था। गायत्री मंत्र शिक्षार्थी के ज्ञान तंतुओं को जागृत करने वाला माना जाता था। वेद संहिताओं में भी गायत्री मंत्र का वर्णन उपलब्ध होता है। इस तरह से गायत्री मंत्र के उपदेश और उसके अभ्यास के द्वारा ज्ञान भंडार को गहनता और दुरूहता का परिचय प्राप्त होता था। इस दृष्टि से गायत्री मंत्र विद्यार्थी की अंतः चेतना को वेदाध्ययन की और उन्मुख करता था। अध्ययन के लिए अत्यन्त आवश्यक मानसिक एकाग्रता भी इसी मंत्र और ओंकार के अभ्यास से साध्य थी।

उक्त प्रकार से बौद्धिक विकास के मार्ग का शिलान्यास करने के साथ ही साथ शारीरिक क्षमता की वृद्धि पर भी पर्याप्त ध्यान रखा जाता था। शारीरिक शक्ति की

प्राप्ति के लिए प्राणायम् का विधान था। शारीरिक और मानसिक विकास की दृष्टि से इसका महत्व था। स्मृतियों में प्राणायाम करने के समय के वर्णन के बारे में उल्लेख किया गया है कि प्राणायाम का अभ्यास प्रारम्भ करते समय, उतनी देर तक प्राणयाम करना चाहिए जितनी देर पन्द्रह अक्षरों के उच्चारण में लगती है।[5] प्राणायाम और गायत्री को प्रारंभिक पाठ कहा जा सकता है। इसके महत्व को बतलाते हुए मनु कहते है यह एकाक्षर (ओं) ही परब्रह्म प्राप्ति का साधन होने से सर्वश्रेष्ठ है, प्राणायाम से बढ़कर कोई अन्य तय नहीं है, गायत्री से श्रेष्ठ अन्य मंत्र नहीं है।[6]

अध्ययन के विषयः

ओंकार, गायत्री तथा प्राणायाम के प्रारंभिक पाठ की पूर्ण तैयारी में आने के उपरान्त ब्रह्मचारी द्वारा विभिन्न विषयों का अध्ययन प्रारंभ किया जाता था। कुछ विषय विशेषतः

ब्राह्मणों के लिए एवं कुछ क्षत्रियों के लिए होते थे किन्तु अन्य विषयों का सभी द्विजों द्वारा अध्ययन किया जा सकता था। यद्यपि इस विषयान्तर का कोई निश्चित्त आधार नहों था।

विभिन्न विषयों में वेदों के अध्ययन को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। वेदों को ज्ञान का भंडार कहा गया है। वेदों के अन्तर्गत चारो वेद, उनके छः अंग अर्थात् वेदांग और उनके रहस्यपूर्ण लेख, यजुर्वेद की शाखाए, सामवेद के हजार पथों, अर्थववेद की ना शाखाए, वार्तालाप पर दिए गए लेख अथवा तर्क शास्त्र, महाकाव्य, ऐतिहासिक कथाए (इतिहास),पुराण तथा चिकित्सा शास्त्र आदि विषय विभाग सम्मिलित थे।[7] मनु ने दो विभिन्न स्थानों में आचार्यादि के लक्षण बतलाते समय कुछ पाठ्य विषयों की ओर संकेत किया है। ब्रह्मचारी प्रकरण में आचार्यो का लक्षण बतलाते हुए मनु तथा याज्ञवल्क्य लिखते हैं कि जो ''कल्प'' तथा ''रहस्य'' के साथ वेद पढ़ाये वह आचार्य है तथा जो वेद के एक भाग को अथवा वेद को छोड़कर ''वेदांग'' को जीविका निमित पढाये वह उपाध्याय कहलाता है।[8] अतः मनु के अनुसार

पाठ्य विषय उपनिषद, कल्प (यज्ञविधि) के साथ वेद तथा वेदांग है। याज्ञवल्क्य चौदह विद्याओं का उल्लेख करते है– पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, वेद चार प्रकार के (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद) तथा इसमें वेदांग छः प्रकार के (शिक्ष, कल्प, ज्योतिष, छन्द, निरूक्त, व्याकरण) होते है। इस तरह से ये चौदह विद्याओं को बताते है।[9] अतः याज्ञवल्क्य के अनुसार एक विद्यार्थी को उसके ब्रह्मचर्य काल में वेद–वेदांग के ज्ञान के साथ ही न्याय एवं मीमांसा का भी अध्ययन कराया जाता था। पातंजलि वेद, उसके छः अंग तथा धर्म का अध्ययन विशेष रूप से ब्राह्मण बालक के लिए अनिवार्य मानते है। उनके अनुसार वेद, उसके छः अंग तथा धर्म का अध्ययन बिना किसी अवसर विशेष के एक ब्राह्मण बालक द्वारा किया जाना चाहिए।[10]

प्रत्येक ब्रह्मचारी को किन किन वेदों का अध्ययन करना पड़ता था इसके बारे में स्पष्ट उललेख नहीं मिलते किन्तु अप्रासंगिक रूप से स्मृतियों में इस और संकेत करने वाले कुछ श्लोक अवश्य प्राप्त होते है। मनु गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने वाले स्नात का वर्णन करते हुए लिखते है कि वेदों का अध्ययन करके, दो वेदों का अध्ययन करके अथवा एक वेद का अध्ययन करके गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होना चाहिए।[11] यह प्रसंग इस तथ्य पर प्रकाश डालता है कि यह आवश्यक नहीं था कि ब्रह्मचर्याश्रम में संपूर्ण वेदों का ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त ही उस आश्रम को छोड़ा जाए। वास्तव में संपूर्ण ज्ञान भंडार को विभिनन विभागों में रख दिया गया था। एक–एक विभाग में एक–एक वेद रखा गया था। कोई भी विद्यार्थी क्रमशः सभी वेदों का अध्ययन कर सकता था, परन्तु एक ही विषय विभाग को पूर्णता के साथ समाप्त करने के उपरान्त भी ब्रह्मचर्याश्रम में उसकी पढ़ाई समाप्त हो सकती थी और वह गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हो सकता था। गुरू संभवतः ऐसे विद्यार्थी को, जिसने एक अथवा दो वेदों का अध्ययन कर लिया है तथा जिसमें अधिक अध्यवसाय कर अन्य वेदों को पढ़ने की शारीरिक अथवा मानसिक शक्ति एवं क्षमता नहीं है अथवा

जिसने सभी वेदों का अध्ययन पूर्ण कर लिया है, गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने की अनुमति प्रदान करते थे।

अन्य विषयों में ज्योतिष विद्या भी अध्ययन का एक विषय था। ज्योतिष शास्त्र में विभिन्न गणनाएं की जाती थीं। जिनके संबंध में हमें कालचक्र, मुहूर्त स्थल, दिशा तथा समय विभाजन आदि के संदर्भ प्राप्त होते है।[12]

समस्त सिद्धान्तों के तुलनात्मक अध्ययन सर्वतंत्र का उल्लेख भी प्राप्त होता है जिसकी एक विषय के रूम में शिक्षार्थियों को शिक्षा दी जाती थी।[13] इसके अतिरिक्त नाटक एवं अर्थ शास्त्र आदि के अध्ययन का भी प्रावधान था।

पातंजलि ने व्याकरण के अध्ययन पर विशेष बल दिया है। उन्होंने व्याकरण का शिक्षण वेदों की रक्षा के लिए[14] एवं साथ ही शब्दों के इतिहास, उनके निर्माण एवं उनके परिवर्तन को समझने के लिए आवश्यक माना है।[15] एक ब्राह्मण के लिए व्याकरण सीखना अनिवार्य था ताकि उसके द्वारा अध्ययन एवं अध्यापन तथा धार्मिक कृत्यों आदि की विधि में गलत एवं दूषित शब्दों का प्रयोग न किया जा सके।[16] अतः एक ब्राह्मण के लिए व्याकरण के अध्ययन की पर्याप्त उपयोगिता थी। यह भी माना जाता था कि जो व्यक्ति शब्दों का प्रयोग व्याकरण के अनुसार करता है वह धार्मिक आनन्द की प्राप्ति उसी प्रकार करता है जिस प्रकार वेदों के विधिपूर्ण अध्ययन से उचित फल की प्राप्ति होती है।[17] अतः शब्दानुशासन व्याकरण अध्ययन के उद्देश्य संक्षेप में रक्षा, परिस्थितियों से अनुकूलन (उह्य), सिद्धान्त (अगमा), तीव्र अवबोध (लघु), तथा संदेह समाप्ति (असंदेह) है।[18]

आख्यायिकाओं, ऐतिहासिक दंत कथाओं, पुराणों तथा यावाकृता, प्रियंगु पदाति, वासवदत्ता तथा सुमनोत्तरा जैसी कथाओं का अध्ययन लोकप्रिय था।[19]

वायसविद्या–शकुन विज्ञान का भी प्रशिक्षण दिया जाता था। इसके अंतर्गत कागों, हस्त रेखाओं, पशु पक्षियो की आवाज़ों आदि को देखकर होनी अनहोनी का पता लगाना सीखाया जाता था।

जन्तु विज्ञान की भी एक अन्य विषय विभाग के रूप में शिक्षा दी जाती थी इसे गो लक्षणा, अश्वलक्षणा, सिंहलक्षणा आदि कहा जाता था।[20]

इसी प्रकार क्षस्त्र विद्या जिसके अन्तर्गत तलवार, भाला, गदा, रथमूसल, महाशिलाकंटक, ढाल व अन्य अस्त्र शस्त्रों का इस्तेमाल करना सिखाया जाता था। धर्म एवं नीति[21] शास्त्र न्याय शास्त्र से सम्बंधित विद्याओं का शिक्षण भी कराया जाता था।

उपर्युक्त पठन–पाठन केवल द्विजों के लिए था क्योंकि केवल द्विजो को ही उपनयन संस्कार की अधिकारिता थी। शिक्षार्थी को उपर्युक्त विद्याओं के अतिरिक्त वर्ण व्यवस्था परक कौशल का ज्ञान भी प्रदान किया जाता था अथवा नहीं, इसके बारे में निश्चित विवरण प्राप्त नहीं होते क्योंकि स्वाभाविक रूप से यह हूनर उसे अधिकाशतः अपने घर के वातावरण मे ही पैतृक विशेषता के रूप में प्राप्त हो जाता था। यद्यपि मनु स्मृति के नवे अध्याय में वैश्या के लिए लिखा गया है– उन्हें मणि, मुक्ता, मोती, लोहा, कपड़ा, गंधक तथा रसों आदि के बारे में जानकारी रखनी चाहिए। इसी के बाद कृषि संबंधी बातों को भी उसे जानने के लिए लिखा गया है।[22] इसी प्रकार से ब्राह्मणादि वर्णो को अपने वर्ण के अनुसार कार्यो को जानने के लिए भी लिखा गया है।[23] परन्तु यह उल्लेख कही पर भी नहीं आता कि इन वर्णो को इस प्रकार का ज्ञान कैसे और कहाँ प्राप्त होगा। उक्त कर्मो की जानकारी रखकर तदनुकूल कार्य करना गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्यों के अन्तर्गत आता है। ब्राह्मण वर्ण के लिए तो यह संभव है कि वह अपने वर्णानुरूप कर्मो का ज्ञान अध्ययन काल में ही प्राप्त कर ले क्योंकि उसका विहित कर्म अध्ययन अध्यापन ही है। अध्यापन और प्रवचन का अधिकार केवल ब्राह्मण को ही होने के कारण यह कहा जा सकता है कि ब्राह्मण ही विद्यार्थी जीवन में रहकर वर्ण परक ज्ञान प्राप्त करते थे। इस अध्ययन की समाप्ति के पश्चात् अन्य विद्यार्थी अपने घर में ही रहकर अपने वर्णानुकूल कर्मो का ज्ञान प्राप्त करते थे। अतः केवल ब्राहमणों को छोड़कर अन्य अन्य द्विजाति (क्षत्रिय तथा वैश्य) विद्यार्थी प्रथम आश्रम में उन्हें इतना ज्ञाप प्राप्त हो

जाता था जिससे वे स्वयं अपने आप विद्या की निधि में से अपनी अभिरूचि के अनुकूल ज्ञान को संचित कर सके।

प्रसंग–

1. वृहदारण्यक उपनिषद– चतुर्थ, पृ. 21
2. उपनीय गुरूः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः।
   आचारमग्नि कार्य व संध्योपासनमें व च।।
   मनु स्मृति 269, याज्ञवल्क्य स्मृति, ब्रह्म–15
3. याज्ञवल्क्य स्मृति, ब्रह्म 15–21
4. मनु स्मृति 2,76–77 तथा कुल्लुक भट्ट इसी श्लोक पर।
5. मनु स्मृति 2,75 कुल्लूक भट्ट
6. एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणयामाः परं तपः।।
   साविध्यास्तु पर नास्ति................।।
   मनु स्मृति 2–83
7. पातंजलि महाभाष्य 1.1 पृ. 9, 21–23
8. उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः।
   सकल्प सरहस्य च तमाचार्य प्रचक्षते।।
   एक देशं तु वेदस्य वेदांगान्यपि वा पुनः।।
   यो ध्याययपि वृर्त्यमु पाध्यायः स उच्यते।।
   मनु 2, 140, 141, याज्ञवल्क्य स्मृति 1–4,35
9. पुराण न्याय मांसा धर्मशास्त्रांग मिश्रिता।
   वेदाः स्थानानि विधानां धर्मस्य च चतुर्दशा।।
   याज्ञवल्क्य स्मृति 1,3
10. पातंजजि महाभाष्य 1.1 पृ. 1 19
11. वेदानधीत्य वेदौवा वेदं वापि यथाक्रमम्।।
   मनु स्मृति 2–3, 1 याज्ञवल्क्य स्मृति 51

12. पातंजलि, महाभाष्य अ 17, पृ. 170

13. वही 12, पृ. 284

14. वही 15, पृ. 1

15. वही 18

16. वही 13, पृ. 2

17. वही 23, पृ. 10

18. वही 14, पृ. 1

19. वही 7–9, पृ. 284

20. वही 2

21. वही 6

22. मनु स्मृति, अ9, 330

23. वही 10–80, 321 से 336

JOURNAL OF LEGAL STUDIES,

POLITICS AND ECONOMICS RESEARCH